

## सांगीतिक सृजनधर्मिता और रचनाकार

डॉ. प्रीतेश आचार्य\*

भारतीय दृष्टिकोण से भी स्वर ताल पदात्मक "लय स्वर के साथ-साथ यदि पद औचित्यपरक नहीं हुआ अथवा भ्रष्ट हुआ तो अनुचित दिशा अथवा भ्रष्टता की ओर ले जा सकता है। इसका ऐतिहासिक उदाहरण पं विष्णु दिगम्बर पलुस्कर जी द्वारा रचना के क्षेत्र में किया गया योगदान रहा है। पं जी ने ऐसी रचनाओं का निषेध किया था, उनमें सुधार किया जिसमें असंगत या अमर्यादित शब्द थे। इस पर ध्यान दिलाने के लिए तथा संयम नियम आदि नैतिक आचरणयुक्त सदाचारी जीवन व्यतीत करने के अनुशासन में शिष्यों का पालन करते हुए, पं विष्णु दिगम्बर पलुस्कर जी ने शिष्यों को गायन के शीलयुक्त सुसभ्य पवित्र पक्ष को बरकरार रखने के लिए परिशोधन एवं नवीन संयोजन की ओर शिष्यों को प्रेरित किया, और अच्छे-अच्छे कवियों के पदों को भी शास्त्रीय रचना में सम्मिलित किया। पलुस्कर जी ने पद दोष से युक्त बंदिशों के पुनरोद्धार के द्वारा बंदिशों की शुद्धता महत्ता पर ध्यान दिलाया, क्योंकि बंदिशों की चोरी के भय से प्रायः गायक अस्पष्ट उच्चारण किया करते थे, जिससे बंदिशों के भावार्थ का स्पष्ट रूप से समझ पाना सम्भव नहीं हो पाता था। पलुस्कर जी के सुयोग शिष्य प्रणवरंग जी को गुरु परंपरा से प्राप्त यह सद्वृत्ति इतनी क्षमता सम्पन्न कर गयी की उन्होंने हिन्दी साहित्य के वैश्विक महाकाव्य कामायनी का संगीत रूपक अपने स्वर संयोजन में साभिनय प्रस्तुत कराया और कामना का भी स्वर संयोजन करते हुए ओपेरा को शास्त्रीय संगीत में समन्वित करते हुए प्रस्तुत किया जिससे संगीत के साथ अन्य क्षेत्र के अन्य लोग भी चकित हो गए। प्रणवरंग जी के द्वारा रचना का अक्षय बीज वृहद् वृक्ष बना जहां रचनाकर्म न होकर रचनाधर्म की स्थापना हुयी। तीन पीढ़ियों के अंतर्गत प्रणवरंग जी के शिष्य भावरंग जी ने न केवल रचना की अपितु अपनी अगली पीढ़ी के रचनाकारों को आकार दिया। प्रभावरंग जी के मतानुसार रचनाधर्मिता के द्वारा अपने को समर्थ करती प्रत्येक पीढ़ी ने मर्यादा के अनुसार परंपरा पर निजी उपलब्धियों एवं सृजनधर्मिता का रंग चढ़ाया। समकालीन अन्य रचनाकारों ने भी समय की आवश्यकता के अनुरूप श्रेष्ठ एवं सार्थक सोद्देश्य भाव वाले पदों की रचना से रचनाकार के व्यक्तित्व को नया आयाम दिया।

\*असिस्टेन्ट प्रोफेसर, संगीत इंस्टीच्यूट ऑफ एजुकेशन वाराणसी।

'महाजनो येन गतः स पन्थाः' के अनुसार श्रेष्ठजनों के मार्ग का अनुसरण श्रेष्ठता तक पहुँचाता है। किन्तु मध्य युगीन सामाजिक अवधारणाओं ने कुछ ऐसी दृष्टि को जन्म दिया, जिसके अनुसार संगीत एवं संगीतकार के शिक्षित वर्ग से अलग-थलग मानने की प्रवृत्ति सामाजिक धारणा का रूप लेने लगी। संगीत के बारे में तो सभी विद्वान ऊंची-ऊंची बातें कहते थे, और कहते हैं किन्तु संगीत सीखकर अपनाकर संगीतकार, विद्वान क्यों नहीं है? इस बारे में मौन का मन्तव्य विस्मयकारी है। 64 कलाओं में पांच ललित कलाएं (वास्तु, मूर्ति, चित्र, काव्य और संगीत) और उनमें से एक काव्य को तो शिक्षा का आधार और विद्वता का आकार माना जाता रहा है, फिर इन्हीं ललित कलाओं में से एक संगीत को विद्या का आधार न मानना क्या विद्या की अधिष्ठात्री मां सरस्वती की अवहेलना न होगी? संगीत साधना से ज्ञान प्रसिद्धि और समृद्धि सभी कुछ प्राप्त किया जा सकता है, क्योंकि इस विद्या (संगीत) ने धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष पाया है। संगीत में रचनात्मकता की निरन्तरता अनिवार्य आवश्यकता बन जाती है, बनी बनाई रचना (बंदिश) को तरह-तरह से प्रस्तुत करना, आलाप, बोलबांट, लयकारी बांट, बढ़त सब में त्वरित रचनात्मकता ही प्रधान रहती है। अतः ऐसी रचनात्मकता, रचना शक्ति को अतिरिक्त क्षमता प्रदान करती है। कुछ लोग इस शक्ति को अहं में नष्ट करने लगते हैं और कुछ लोग विषय का मर्म रचते हैं, और इस रचना क्षमता के बल से अन्य गुण विधा भी प्रबल हो प्रस्फुटित होने लगती है, और ऐसे संगीतज्ञ कलाकार, कवि, चित्रकार, मूर्तिकार आदि, रचनाधर्मी पक्ष से विशिष्ट हो जाते हैं। चेतना के बहुआयामीय विकास में संगीत के विश्लेषणात्मक अध्ययन से संगीत के मनोरंजन पक्ष के अतिरिक्त सर्जक एवं गुणवर्धन पक्ष भी सप्रमाण स्पष्ट हो सकते हैं। जिसके आधार बिन्दु निम्नवत् हैं— भाव, संवेदनशीलता, ध्वनि, स्वर, शब्द निर्मिती, भाषा, संयोजन, समरूपता, परिमार्जन इन सबका संयुक्त परिणाम— लय, स्वर, ताल, राग अर्थात् रचना का निर्माण।

रचना में निहित भाव संसार का विश्लेषण किया जाए तो स्पष्ट होता है कि जैसे अवसर के अनुकूल गंभीर व्यक्ति भी परिवर्तित हो अपने मूल स्वभाव के विपरीत कभी कभी विनोदी हास परिहास युक्त या करुणाशील हो उठता है और इसे व्यक्ति का उपस्वभाव माना जाता है किन्तु अवसर और प्रसंग के अनुकूल बदला हुआ स्वभाव संदर्भ समाप्ति पर पुनः मूल स्वभाव पर लौट जाता है। इसी प्रकार संगीत रचनाओं में राग प्रकृति या स्वाभाव के व्यवहार में भी यह प्रवृत्ति (चलन) देखी जा सकती है। रचनाकार प्रभावरंग जी के मतानुसार प्रयोगानुकूल रचनाओं में रागों का मूल स्वभाव के विपरीत भी उपयोग करते देखा गया है। यथा:—दरबारी की धीर गंभीर प्रकृति में श्रृंगार रसानुकूल पदों वाली बंदिशें इसे

प्रमाणित करती है यथा:— 'घर जाने दे छाड़ मोरी बहियां' आदि। किन्तु इस संदर्भ में ध्यातव्य है 'और नहीं कछु काम के, मैं भरोसे अपने राम के' (राग दरबारी, पद तुलसीदास कृत) 'सुन केवट के बैन (मारु बिहाग, राम चरित मानस') आदि पदों का प्रयोग बंदिशों की भ्रष्ट शब्दावली के पुनर्संस्कार का प्रयास कहा जा सकता है। जहाँ यथा साध्य राग चरित्र एवं प्रकृति के साथ पदगत कथ्य तथ्य सामन्जस्य बैठाने के प्रयत्न पर ध्यान केन्द्रित किया गया है

आचार्य शारंगदेव ने संगीत रत्नाकर ग्रंथ में गीतों के जो गुण बताये हैं उनसे युक्त रचना को आदर्श रचना की श्रेणी में रखा जाता है। आचार्य शारंगदेव ने दस गुणों का वर्णन किया है जो इस प्रकार हैं :-

**व्यक्तं पूर्ण प्रसन्नं च, सुकुमारमलंकृतम्**

**समं सुरक्तं भलेक्षणं च विकृष्टं मधुरं तथा।**

**दशैते स्युर्गुणा गीते तत्र व्यक्तं स्फुटैः स्वरैः<sup>2</sup>।।**

उपरोक्त श्लोक में वर्णित लक्षण का अर्थ इस प्रकार है।

- 1 व्यक्त :- स्पष्टता के साथ स्वरों (अ ई आदि) और प्रकृति (शब्द की धातु) प्रत्यय से युक्त पदों, छन्द, और राग से व्यक्त कहा गया है।
- 2 पूर्ण :- स्वरों से पूर्ण अंगों और गमक वाला पूर्ण (होता है)।
- 3 प्रसन्न :- प्रसन्न प्रकट अर्थ वाला है।
- 4 सुकुमार :- कंठ में होने वाला (कोमलता से युक्त) सुकुमार (कहलाता है)।
- 5 अलंकृत :- तीन स्थानों से उठने वाला अलंकृत (होता है)।
- 6 सम :- वर्ण (अक्षर) लय (और) स्थान की समानता वाला सम इस प्रकार कहा जाता है।
- 7 सुरक्त :- वीणा, वंश (और) कंठ ध्वनि की एकरूपता से युक्त सुरक्त (होता है)।
- 8 श्लेक्षण :- नीचे, ऊँचे (स्थानों और) द्रुत, मध्य आदि (लयों) में स्वरों की श्लेक्षणता (ध्वनि टूटे बिना तेल की धारा की तरह एक सी बने रहने) से श्लेक्षण कहा जाता है।
- 9 विकृष्ट :- भरत आदि (पूर्वाचार्यों) के द्वारा ऊँचे (स्वरों के सम्यक) उच्चारण से विकृष्ट कहा गया है।
- 10 मधुर :- लोगों के चित्त का हरण करने वाला लावण्य की धुरी (अर्थात् पराकाष्ठा) से पूर्ण मधुर होता है।<sup>3</sup>

संगीत का आधार है स्वर सौंदर्य जिसका मूर्त रूप है गीत-बंध या राग। संगीत रत्नाकर के टीकाकार कल्लीनाथ ने स्पष्ट शब्दों में कहा है कि **रंजकः स्वरसंदर्भो गीतमित्यभिधीयते**<sup>4</sup>। अर्थात् प्रीति कर स्वर-संदर्भ का नाम गीत है। इसके तीन अंग माने गये हैं स्वर ताल और पद। इन तीनों का संयोग करने वाले रचनाकार का अन्तःकरण रचनाओं में ही भ्रमण करता है जिसका प्रमाण रचनाओं में निहित मर्म भाव के विश्लेषण से ही प्राप्त होता है।

श्री कृष्ण बबनराव हल्दनकर जी के अनुसार रचना में प्रारंभ से अंत तक सभी कुछ प्रमाणबद्ध तथा योजनाबद्ध होता है। रचना की स्वरावलियां, उसकी लंबाई उसके प्रत्येक स्वर को खींचने की अवधि, उसमें गुंथे हुये शब्द, उसके बने हुए विभाग इत्यादि ही नहीं वरन् बंदिश समाप्त होते ही तुरंत मुखड़े को अविश्राम उठाना, कसी हुई रचना की पहचान है।<sup>5</sup> रचना जथामुखड़े के मध्य यदि कोई अवकाश रखा जाता है तो वह पूर्वगय अवकाश से प्रमाणबद्ध होना, कसी रचना का लक्षण है। अर्थात् तालरूपी खांचे में स्वर तथा बोलरूपी रत्नों को पूरी तरह कसकर बैठाकर रचना रूपी आभूषण को सुसज्जित किया जाता है।

**सन्दर्भ—**

1. नाट्य शास्त्र— अध्याय 28/11
2. डॉ. राजेश्वर आचार्य प्रभावरंग जी के व्याख्यान का अंश
3. संगीत रत्नाकर—चतुर्थ अध्याय, श्लोक 374
4. संगीत रत्नाकर द्वितीय खंड व्याख्या और अनुवादकर्त्री सुमद्रा चौधरी पृष्ठ 323— 324
5. मिलनोत्सुक दो तानपुरे—अनुवादक श्री हिमांशु एवं वी विश्वरूप पृष्ठ 145—146